ABBREVIATIONS[£]

AAWL *Abhandlungen der Akademie der Wissenschaften und der Literatur*, Mainz

ABORT *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*

AGWG *Abhandungen der Koniglichen Gesellschaft der Wissenschaftem in Gottingen*

AIOC *All-India Orientalist Congress*

AitA *Aitareya-aranyaka*

AitB *Aitareya-brahmana*

ALB *Adyar Library Bulletin (Brahmavidya)*

AN *Anguttara-nikaya*

AOS American Oriental Society

ApDhS *Apastamba-dharmasutra*

AsGS *Asvalayana-grhyasutra*

ASS *Anandasrama Sanskrit Series*

ASS *Asvalayana-srautasutra*

AsSt *Asiatische Studien*

AV or AthV *Atharvaveda*

BAU *Brhadaranyaka-upanisad*

BEI *Bulletin d'Etudes Indiennes*

BharGS *Bharadvaja-grhyasutra*

BITCM *Bulletin of the Institute of Traditional Cultures, Madras*

BSOAS *Bulletion of the London School of Oriental and African Studies*

BSS *Baudhayana-srautasutra*

Car *Caraka-samhita*

  Su *Sutra-sthana*,

  Vi *Vimana-sthana*,

  Sa *Sarira-sthana*

ChU *Chandogya-upanisad*

£ For some reason his abbreviation section does not contain all abbreviations used in the footnotes.

DAWW *Denkschriften der Akademie der Wissenschaften, Wien*
DN *Digha-nikaya*
EAZ *Ethnographisch-Archaologische Zeitschrift*
EC *Epigraphia Carnatica*
EI *Epigraphia Indica*
ERE *[Hasting's] Encyclopaedia of Religion and Ethics*
GauGS *Gautama-grhyasutra*
GGA *Gottingische Gelehrte Anzeigen*
GoGS *Gobhila-grhyasutra*
GOS *Gaekwad Oriental Series*
HCIP *History and Culture of the Indian People*
HirGS *Hiranya-grhyasutra*
HIL *History of Indian Literature*
HoDh *History of Dharmasastra* by P.V. Kane
HOS *Harvard Oriental Series*
IA *Indian Antiquary*
IHQ *Indian Historical Quarterly*
IIJ *Indo-Iranian Journal*
IT *Indologica Taurinensia*
JAHRS *Journal of the Andhra Historical Research Society*
JA *Journal Asiatique*
JAIH *Journal of Ancient Indian History*
JAOS *Journal of the American Oriental Society*
JASB *Journal of the Asiatic Society, Bengal*
Jat *Jataka*
JB *Jaiminiya-brahmana*
JEAS *Journal of the European Ayurvedic Society*
JGJKSV *Journal of the Ganganath Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeetha*
JIBS *Journal of Indian and Buddhist Studies*
JIH *Journal of Indian History*
JIPh *Journal of Indian Philosophy*
JOIB *Journal of the Oriental Institute, Baroda*

JOR *Journal of Oriental Research* (Madras)

JRAS *Journal of the Royal Asiatic Society*

KathU *Katha-upanisad*

KZ *(Kuhns) Zeitschrift fur vergleichende Sprachforschung*

LaugGS *Laugaksi-grhyasutra*

Mbh *Mahabharata*

MN *Majjhima-nikaya*

MSS *Munchener Studien zur Sprachwissenschaft*

MundU *Mundaka-upanisad*

Mv *Mahavagga*

NIA *New Indian Antiquary*

NAWG *Nachrichten von der Akademie der Wissenschaften in Gottingen*

ParGS *Paraskara-grhyasutra*

PTS *Pali Text Society edition*

PTSD *Pali Text Society Dictionary* by Rhys Davids and Steele

PW *[Petersburger] Sanskrit Worterbuch*, O. Bohtlingk und R. Roth

Ram *Ramayana*

RE Rock Edicts of Asoka

RV *Rgveda*

SankhGH (or SGS) *Sankhayana-grhyasutra*

SBE *Sacred Books of the East*. ed. Max Muller

SII *South Indian Inscriptions*

SISSW South Indian Saiva Siddhanta Works Publishing Society

SITI *South Indian Temple Inscriptions*

SOAW *Sitzungsberichte der Ostereichischen Akademie der Wissenschaften*

StII *Studien zur Indologie und Iranistik*

Su *Susruta-samhita*

- Su Sutra-sthana,
- Vi Vimana-sthana,
- Sa Sarira-sthana

SV *Samaveda*

TaitB *Taittiriya-brahmana*

TAPS *Transactions of the American Philosophical Society*

VaikhGS *Vaikhanasa-grhya-sutra*

VajPr *Vajasaneyi-pratisakhya*

Vin *Vinaya*

WZKS *Wiener Zeitschrift fur die Kunde Sudasiens*

YV *Yajurveda*

ZDMG *Zeitschrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft*

ZII *Zeitschrift fur Indologie und Iranistik*

अध्याय 5*

(प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के) आधुनिक पक्षधर

(Modern Apologists)

भारतीय समाज में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक शिक्षा के बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान के बावजूद भी इस विषय पर विद्वत्तापूर्ण साहित्य की कमी है और जो हैं भी वे प्रभावशाली नहीं कहे जा सकते। हालाँकि पश्चिम के लेखकों ने आधुनिक और समकालीन शिक्षा एवं शैक्षिक सुधारों के विभिन्न आयामों पर (जैसे कि थॉमस बी मैकॉले [Thomas B. Macaulay] की भारतीय शिक्षा में भूमिका) बहुत कुछ लिखा है, लेकिन उससे पहले की भारतीय शिक्षा व्यवस्था के बारे में अधिकतर भारतीय विद्वानों ने ही शोध किया है जिनमें कुछ बहुत ही प्रमुख और विद्वान लेखक भी शामिल हैं। उनके द्वारा बहुत उपयोगी सामग्री एकत्रित किए जाने के बावजूद आश्चर्य की बात है कि उनका लेखन सन्तोषजनक नहीं है। इसके पीछे बहुत-से कारण हैं। सबसे पहला कारण तो यह है कि ये लेखक प्रमुख रूप से ऊँची जाति के हैं और खासकर ब्राह्मणों के प्रति इनका पक्षपाती रवैया है। इस प्रकार अलतेकर[1] (Altekar) एक स्थान पर ब्राह्मणों की भूमिका के बारे में कहते हैं : "नैसर्गिक रूप से अन्य जातियों के मुकाबले ब्राह्मण अधिक बुद्धिमान होने के कारण..." और भेदभाव की परम्परा को भी उचित ठहराते हैं। शूद्रों को वेदों के अध्ययन से कुछ हद तक इस डर से दूर रखा गया कि कहीं वे अपनी भिन्न उच्चारण आदतों से इस पवित्र पाठ में गलतियाँ शामिल न कर दें; परवरिश कभी भी नैसर्गिक स्वभाव पर हावी नहीं हो सकती; वे यहाँ तक कहते हैं कि, "बाँस हमेशा बाँस ही रहता है, वह कभी भी चन्दन नहीं हो सकता, चाहे वह मलाबार के पहाड़ों (पश्चिमी घाट) पर उगा हो।"[2] हालाँकि आगे कुछ ईमानदारी से आकलन कर वे लिखते हैं कि ऐसा करने के पीछे प्रमुख उद्देश्य शूद्रों को अधीन और आर्यों के पवित्र संस्कारों की जादुई शक्ति से वंचित रखना था।[3] अलतेकर ने महसूस किया कि वैदिक साहित्य के रचयिताओं को अच्छी शिक्षा की शक्ति पर तथा वर्तमान परिस्थितियों से ऊपर उठने की मनुष्य की क्षमता पर खासा भरोसा था। उनका मानना था कि बाद के काल में जीवन की परिघटना पर अधिक गहन चिन्तन हुआ और "परवरिश" की अपेक्षा "प्रकृति" को ज्यादा महत्त्व

---

* Hartmut Scharfe, *Education in Ancient India*, Brill, Leiden, 2002, Chapter 5.

1 A.S. Altekar, *Education in Ancient India*, 6th ed., Benares 1965, p. 43.

2 Altekar, *ibid.*, p. 39 with reference to *Subhasita-ratna-bhandara* 41.7; also Ram Gopal, *India of Vedic Kalpasutras,* Delhi 1959, p. 126.

3 Altekar, *ibid.*, p. 46; cf. below pp. 197-199 (See pp. 197-199 of the book ... Trans.).

दिया गया जिसके चलते वंशानुगत गुणों पर जोर, जैसे कर्म और पुनर्जन्म का प्रभाव, और जाति व्यवस्था की कठोर प्रणाली, को बढ़ावा मिला।[4]

औपनिवेशिक शासन और स्वतंत्रता के संघर्ष की पृष्ठभूमि में शानदार अतीत के अतिरंजित दावों और काव्यात्मक अतिशयोक्तियों (poetic hyperbole) को ही सच मान लेने की प्रवृत्ति को समझा जा सकता है।[5] अलतेकर[6] और मुखर्जी[7] (Mookerji) दोनों ही छान्दोग्य उपनिषद V 11,5 में वर्णित एक राजा के इस आत्मश्लाघी दावे (boastful claim) से कि, “मेरी जनपद में कोई चोर नहीं है, बिना पवित्र अग्नि के कोई नहीं, [और] कोई अज्ञानी भी नहीं है,”[8] यह निष्कर्ष निकालते हैं कि उस राजा के काल में सम्पूर्ण साक्षरता और सार्वभौमिक एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी – जबकि इस बात की प्रबल सम्भावना है कि उस समय लेखन का अस्तित्व ही न रहा हो जिस समय इस उपनिषद की रचना की गई, और राजा की इस डींग से साक्षरता की सत्यता को स्थापित नहीं किया जा सकता। निम्न वर्गों को निश्चित ही औपचारिक शिक्षा के दायरे से बाहर रखा गया था। उन्हें केवल उनके शिल्प में ही प्रशिक्षण मिलता था। कुछ आधुनिक लेखकों ने यदा कदा उनके प्रति एहसान और सीमित मात्रा में दया अवश्य दिखाई है। मुखर्जी[9] मीमांसा-सूत्र VI 1,1-7 से यह निष्कर्ष निकालते हैं कि हो सकता है शूद्रों ने भी कुछ धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लिया हो (यानी, उनके यजमानों के रूप में!) और चूँकि इन अनुष्ठानों को बहुत ही बुद्धिमानीपूर्वक करना पड़ता था, अतः “वे उसके लिए आवश्यक बौद्धिक उपकरण हासिल कर सकते थे।” लेकिन बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य को कराने की भूमिका सिर्फ ब्राह्मण पुजारियों की थी और शूद्रों को इसका कर्मकाण्डी प्रशिक्षण दिए जाने का कोई उल्लेख नहीं है। छान्दोग्य

---

[4] Altekar, *ibid.*, p. 38. विपरीत दृष्टिकोण का उपयोग करते हुए बताते हैं कि क्यों महिलाओं ने दीक्षा और वेद अध्ययन का अधिकार खो दिया : चूँकि कम आयु में विवाह के कारण एक लड़की वेद अध्ययन के लिए सीमित समय ही दे सकती थी, वह योग्य विद्वान नहीं बन सकती थीं, और “शौकिया वैदिक अध्ययन को न केवल बेकार, बल्कि खतरनाक भी माना जाता था।” (*ibid.*, p. 217).

[5] एम श्रीनिवास आयंगर का उल्लेख (ग्रन्थ सन्दर्भ के बिना), एक पाण्डियन रानी जिसने एक कवि के क्रोध को शान्त करने के लिए एक पुरुष वाहक के भेष में एक पूरी रात उनकी पालकी को ढोया था (M. Srinivasa Aiyangar, *Tamil Studies,* Madras 1914, repr. New Delhi 1982, p. 260), इसे एस गुरुमूर्ति द्वारा, *Education in South India,* Madras 1979, p. 153 में दोहराया और सँजोया गया है : यहाँ तक कि राजाओं ने भी कवियों के लिए पालकी ढोने का काम किया था!

[6] Altekar, *ibid.*, p. 177.

[7] R.K. Mookerji, *Ancient Indian Education*, p. 102.

[8] *छान्दोग्य उपनिषद* (ChU) V 11.5 *न मे स्तेनो जनपदे... नानाहिताग्निर नाविद्वान*, *रामायण* I 6.8 और 12-14 भी देखें।

[9] Mookerji, *ibid.*, p. 274.

उपनिषद् VI 1,1 में वर्णित उद्दालक आरुणि के इस कथन से यह काफी स्पष्ट हो जाता है, "वास्तव में, हमारे परिवार में कोई भी अशिक्षित नहीं रहा है, जो [केवल] जन्म से ब्राह्मण बनके रह जाता।"[10] जाहिर है कि उपनिषदों के काल में भी ऐसे ब्राह्मण थे जो अध्ययन नहीं करते थे।[11] मुखर्जी न्यायसूत्र I, 1.7 *आप्तोपदेशः शब्दः* ("मौखिक उपदेश वह है जो एक सक्षम व्यक्ति देता है") पर वात्स्यायन के भाष्य को उद्धृत करते हैं। इसके अनुसार, ऋषि के अलावा, आर्य और म्लेच्छ ("विदेशी") भी समान रूप से शाब्दिक तौर पर दिए गए ज्ञान के उचित स्रोत हैं। लेकिन यह कथन इस बात का समर्थन नहीं करता है कि यह "दार्शनिकों की व्यापक सहिष्णुता और सार्वभौमिकता को दर्शाता है जिसमें गैर-वैदिक और वैदिक ज्ञान को शुष्क और निष्पक्ष जाँच के आधार पर समकक्ष रखा गया,"[12] क्योंकि इस सूत्र में वात्स्यायन धार्मिक शिक्षा की बात नहीं कर रहे बल्कि स्पष्ट तौर पर उनका तात्पर्य व्यवहारिक ज्ञान अर्थात "लोकाचार" से है। उनके अनुसार एक विदेशी के कथन पर भी विश्वास किया जा सकता है अगर वह किसी दूसरे नगर का रास्ता बताए या फिर बाहर के मौसम की बात करे।

गौर करने लायक है कि प्राचीन भारतीय संस्थानों को इस बात का झूठा श्रेय दिया जाता है कि उनमें भी आज के बड़े आधुनिक विश्वविद्यालयों की आडम्बरी रस्में पाई जाती थीं। यह भ्रान्तिपूर्ण है कि जब एक वैदिक शिक्षक अपने शिक्षार्थी (या फिर दो या तीन शिक्षार्थियों) को अध्ययन की समाप्ति पर विदा करता है तो उसकी तुलना एक विश्वविद्यालय के "दीक्षान्त समारोह में कुलपति के सम्भाषण" से की जाए।[13] अलतेकर दावा करते हैं कि, "शैक्षिक गतिविधियों और प्रयासों का प्रमुख उद्देश्य कोई डिग्री प्राप्त करना नहीं था... बल्कि इसके पीछे प्रमुख प्रेरणास्रोत राष्ट्रीय विरासत को संरक्षित करने की इच्छा थी।"[14] यह और बात है कि प्राचीन भारत में राष्ट्र की कोई अवधारणा ही नहीं थी जिसकी विरासत के संरक्षण के लिए लोग

---

[10] *छान्दोग्य उपनिषद* VI 1,1 *न वै सोमयस्मात् कुलीनो न अनूच्य ब्रह्मबंधुर् इव भवति। महाभाष्य* खण्ड I पृ. 411, 16एफ़ में एक श्लोक है :

तपः श्रुतम् च योनिश् चेति एतद् ब्राह्मण-कारकम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जाति-ब्राह्मण एव सः।।

"तप, विद्या और जन्म – इन्हीं से ब्राह्मण बनता है; वह, जिसमें तप और विद्या का अभाव होता है, केवल जाति / जन्म से ही ब्राह्मण होता है।"

[11] बाद में, *मनु* II 168 ऐसा द्विज जो वेद का अध्ययन नहीं करता है और इसके बजाय अपने-आप को किसी और चीज के लिए समर्पित करता है, वह अपने जीवनकाल में ही, और उसके बाद उसकी सन्तान भी शूद्र हो जाएँगे।

[12] Mookerji, *ibid.*, p. 277.

[13] Mookerji, *ibid.*, p. 100; Altekar, *Education,* p. 121.

[14] Altekar, *ibid.*, p. 171.

जुट जाएँ। हाँ, इतना है कि वैदिक अध्ययन के सफल समापन से प्रतिष्ठा मिलती थी, और नहाकर माला पहने स्नातक का उसके घर पर सम्मानपूर्वक स्वागत किया जाता था।

ये आधुनिक पक्षधर प्रयासरत हैं कि प्राचीन शैक्षिक प्रथाओं को आधुनिक शहरी पाठकों के समक्ष ऐसा प्रस्तुत करें कि ये उन्हें अधिक तर्कसंगत लगें। इसी कड़ी में यहाँ कहा जाता कि रटने के लिए ग्रन्थों की बढ़ती हुई संख्या के चलते इनका मतलब समझाना ज्यादा मुश्किल होता गया और अधिकतर वैदिक विद्वान सिर्फ इनका पाठ कर सकते थे, वे न तो इसे समझते थे और न ही इसकी व्याख्या करने में सक्षम थे। लेकिन इसे एक सोच-समझ कर लिया गया निर्णय मान लिया गया (किसका निर्णय?)। अलतेकर के अनुसार, "वैदिक साहित्य के विकास के कारण और उसे सम्पूर्ण रूप से कण्ठस्थ करने की आवश्यकता के कारण अनिच्छापूर्वक यह निर्णय लिया गया कि ब्राह्मणों का एक वर्ग इसे सिर्फ कण्ठस्थ करेगा और दूसरा इसकी व्याख्या करेगा।"[15] परन्तु ऐसे सोच-समझ कर निर्णय लिए जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसी तरह सी कुन्हन राजा[16] को यह बात नहीं भायी है कि युवा लड़कों को उनके शिक्षकों के साथ रहने के लिए घर से दूर भेजा जाता था और उन्होंने कहा कि शायद अधिकांश शिक्षार्थियों को इस बात की अनुमति थी कि वे शाम को अपने घर वापस चले जाएँ। जाहिर है यह समझ साक्ष्यों में पाए गए कथनों से सर्वथा विपरीत है। देखा जाए तो असलियत में दुनियाभर की संस्कृतियों के नृजातीय साक्ष्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि वयस्कों के दुनियावी दृष्टिकोण और कबीले की वैश्विक दृष्टि अपनाने के लिए दीक्षा संस्कारों को लड़कों के लिए जानबूझकर कष्टप्रद बनाया जाता था : उसे न बोलने वाले सशस्त्र अजनबी रात में अपहृत कर जंगल में एक गुप्त शिविर में ले जाते थे, उसकी कठिन परीक्षा ली जाती थी, और उसे अपने लोगों के विभिन्न धार्मिक रीति रिवाजों तथा रहस्यों से परिचित कराया जाता था।[17]

आधुनिक विद्वानों में एक और विपरीत प्रवृत्ति नज़र आती है जिसमें आधुनिक, मुख्यत: पश्चिमी, परम्पराओं की बखिया उधेड़ने के दौरान प्राचीन परम्पराओं की जमकर सराहना की जाती है। भारतीयों के पास पर्याप्त कारण हैं कि वे अपनी उस मौखिक परम्परा पर गर्व करें जिसने निष्ठापूर्वक अपने प्राचीनतम साहित्य को संरक्षित किया है; लेकिन लिखित किताबों ने भी पारम्परिक भारतीय संस्कृति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशेषकर कम पढ़े जाने वाले ग्रन्थों और उन बहुआयामी प्रश्नों से जुड़े अध्ययनों (far-ranging studies) के संरक्षण में, जो

---

[15] Altekar, *ibid.*, p. 164.

[16] C. Kunhan Raja, *Some Aspects of Education in Ancient India*, Madras 1950, pp. 105f.

[17] C.W.M. Hart, in: *Education and Culture*, ed. George D. Spindler, New York 1963, pp. 410-415.

रटने की क्षमता से परे हैं, किताबों ने अपना मूल्य अवश्य ही सिद्ध किया है। फिर भी एस सी सरकार जैसे विद्वानों की आक्षेप करती हुई उक्तियाँ हैं कि, “बोले गए शब्द संवेदना, लय और गति से सराबोर होते हैं। उनकी जगह किताबों पर जरूरत से अधिक निर्भरता, जिसे केवल सिखाने की प्रक्रिया में उपादान और उपकरण के रूप में ही लिया जाना चाहिए, पश्चिमी देशों की ही तरह ‘थकान और अरुचि’ (world weariness) की तरफ ले जाती है।”[18] यह कथन उन्होंने रवींद्रनाथ टैगोर को आधार बनाकर लिखा है, और साथ ही गाँधी की प्रशंसा भी की क्योंकि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ऐसे स्कूलों की स्थापना की जहाँ किताबों की तुलना में हस्तशिल्प पर अधिक बल दिया जाता था। जाहिर है गाँधी हस्तशिल्प के शिक्षण को न सिर्फ जीवन जीने के लिए एक बेहतर साधन मानते थे जो गरीबों को जीविकोपार्जन के लिए सक्षम बनाता था, बल्कि यह भी मानते थे कि चरित्र निर्माण के लिए हस्तशिल्प में प्रशिक्षण पुस्तक पढ़ने की तुलना में बेहतर माध्यम है। आर के मुखर्जी योग सूत्र I 2 में वर्णित *योगश्चित्त वृत्ति निरोध:* (“योग मानसिक विचलन को नियंत्रित करना है”।) योग की परिभाषा को मनमाने तरीके से शिक्षा के क्षेत्र में लाते हुए लिखते हैं, “अतः, शिक्षा का उद्देश्य चित्त वृत्ति निरोध है, यानी उन मानसिक गतिविधियों का निषेध जिनके द्वारा यह सांसारिक पदार्थों या वस्तुओं से जुड़ा हुआ है”।[19] यह कथन बहुत विडम्बनापूर्ण है क्योंकि ये एक ऐसे लेखक की तरफ से आ रहा है जो बहुत ही गर्व से विभिन्न विषयों पर स्वरचित सोलह पुस्तकों का हवाला देते हैं[20] जिसके अन्तर्गत *प्राचीन भारत में स्थानीय सरकार* (Local Government in Ancient India) से लेकर *गुप्त साम्राज्य* (The Gupta Empire) और *प्रारम्भिक भारतीय कला* (Early Indian Art) तक समाहित हैं। मुखर्जी का दावा भारतीय चिन्तन की वैरागी और आध्यात्मिक प्रवृतियों पर अधिक जोर देते हुए शिक्षा और पाण्डित्य के क्षेत्रों में बहुत-सी अन्य भारतीय उपलब्धियों की उपेक्षा करता है। लेकिन वह इकलौते ऐसे व्यक्ति नहीं जो यह करते हैं, और यह पूछा जाना चाहिए कि ऐसे कथनों से किसी ने भारत की कितनी सेवा कर ली। विवेकानंद ने (कुछ-कुछ रूसो [Rousseau] की तरह!) दावा किया है कि “शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है”[21] और उन्होंने तर्क दिया कि न्यूटन ने जो गुरुत्वाकर्षण की खोज की वह सेब की वजह से नहीं बल्कि उनके अपने अन्तर्मन से आई। गिरते हुए सेब ने बस वही सुझाया जो न्यूटन ने अपने मन की गहराइयों से

---

[18] S.C. Sarkar, *The Story of Education for All*, Calcutta 1960, p. 228. *स्मृतिचन्द्रिका* I पृ. 52 में नारद के माने जाने वाले एक श्लोक में पुस्तकों पर निर्भरता को ज्ञान की छह बाधाओं में से एक कहा गया है। (Kane, *History of Dharmasastra (HoDh),* vol. 2 p. 349).

[19] Mookerji, *Education*, p. xxii; cf. also p. 366.

[20] Mookerji, *ibid.*, p. ii.

[21] *The Complete Works of Swami Vivekananda*, 10th ed. Calcutta 1972, vol. IV p. 358; cf. also the remark quoted p. 314 fn. 5 below (See p. 314f fn. 5 of the book … Trans.).

सोचकर प्राप्त किया था।[22] अधिक-से-अधिक यह अर्धसत्य ही है : हालाँकि अवलोकन कभी भी सिद्धान्तों और अवधारणाओं का सृजन नहीं करते हैं, लेकिन अवधारणाओं में मौजूदा अवलोकन की व्याख्या करने की क्षमता होनी चाहिए और अकसर अवधारणा की शुरुआत अवलोकन से होती है – और यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कई भारतीय लेखक अवलोकन की भूमिका को महत्त्व नहीं देते। कहा जाता है कि भारतीय सभ्यता की उत्पत्ति अद्वितीय है। "यह सभ्यता प्रकृति के बहुत निकट सम्पर्क में मनुष्य की आन्तरिक आवश्यकताओं की प्रतिक्रिया में विकसित हुई न कि सामाजिक प्रतिबद्धताओं और जरूरतों के दबाव में।"[23]

भारतीय शिक्षा प्रणाली की हर कीमत पर गुणगान करने की यह प्रवृत्ति कभी-कभी इतनी प्रबल हो जाती है कि पश्चिम के प्रति यह प्रत्यक्ष तौर पर शत्रुतापूर्ण रवैया अपना लेती है। कला इतिहासकार आनंद कुमारस्वामी भारतीय शिल्पकारों की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं, "शिल्पकार न सिर्फ एक व्यक्ति है जो अपनी वैयक्तिक सनक (whims) को अभिव्यक्त करता है, बल्कि वह ब्रह्माण्ड का एक हिस्सा है, जो शाश्वत सौन्दर्य के आदर्शों और अपरिवर्तनशील नियमों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है... पुरानी मान्यताओं वाले पूर्वी शिल्पकार उन लोगों के प्रति बहुत तिरस्कारपूर्ण धारणा रखते हैं जो 'अपनी ही कल्पना से कुछ बनाते हैं,' और उनके विचारों को उचित ठहराने के लिए बहुत कुछ कहा जा सकता है।"[24] ऐसा लगता है कि एडवर्ड सईद की पुस्तक *ओरिएन्टलिज़्म*[25] के प्रभाव में आकर पी के मुखोपाध्याय[26] दावा करते हैं कि पश्चिम ने एक ऐसा भारतीय मानस बना दिया है जिसने पश्चिमी मानकों और भारतीय हीन भावना को स्वीकार कर लिया है; भारतीयों को इससे मुक्ति पानी ही होगी। सईद की पुस्तक की निकटवर्ती पूर्व में हो रहे घटनाक्रम को समझने में जो भी उपयोगिता रही हो, भारत के ऊपर उनके सिद्धान्तों का यदा कदा उपयोग असन्तोषजनक है : मैकॉले जैसे अँग्रेजों ने ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था के आधुनिकीकरण पर बल दिया और इसे अधिक तथ्य-आधारित और ऐतिहासिक बनाया (और प्राकृतिक विज्ञान पर अधिक जोर दिया), जबकि परम्परावादी शिक्षण खोज को

---

[22] *The Complete Works of Swami Vivekananda*, Mayavati 1946, vol. I ("Karmayoga"), p. 26.

[23] S.C. Sarkar, *The Story*, p. 227.

[24] A.K. Coomaraswamy, *The Indian Craftsman*, London 1909, p. 75. हालाँकि, अन्यत्र उन्होंने स्वीकार किया कि "पारम्परिक अभ्यास पर बहुत अधिक निर्भरता ने मानसिक ठहराव को जन्म दिया है जो भारतीय कला को उसकी पूर्व जीवन्तता से वंचित करता है" (*Mediaeval Sinhalese Art*, 2nd ed., New York 1956, p. ix).

[25] Edward Said, *Orientalism,* New York 1978.

[26] P.K. Mukhopadhyay, in: D.P. Chattopadhyaya, Ravinder Kumar (editors), *Language, Logic and Science in India*, New Delhi 1995, pp. 13-18.

हतोत्साहित करता था, हठधर्मिता को बढ़ावा देता था और युगों से अपरिवर्तनशील भारत की एक ऐसी तस्वीर पेश करता था जो गलत थी। विवेकानंद ने शिकायत की कि "कुछ देशों में शिक्षक केवल व्याख्याता बनकर रह गए हैं... उन्हें अपने पाँच डॉलर की चिन्ता रहती है और जिसे पढ़ाया जाता है वह शिक्षक के शब्दों से अपने मस्तिष्क को भरने की अपेक्षा करता है और इसके बाद दोनों ही अपनी राह चल देते हैं।"[27]

पश्चिमी शैक्षिक प्रणाली उस तरह के अन्तरंग गुरु-शिष्य सम्बन्धों का प्रदर्शन नहीं करती जैसे कि भारतीय गुरु-शिष्य सम्बन्धों में विशेष तौर पर पाए जाते हैं,[28] लेकिन शिक्षक और छात्र के बीच की वृहत्तर पारस्परिक स्वतंत्रता को आपस में परवाह न करने वाले शैक्षणिक दिखावे के बराबर मानना बिलकुल भी उचित नहीं है; और फिर यदा कदा दिखने वाले विचारहीन शिक्षण को केवल डॉलर की कमाई से जोड़ना भी। यहाँ भारतीय वैदिक परम्परा के प्राचीन वेद पाठकों का उल्लेख करना भी जरूरी नहीं – पिछली कई शताब्दियों से भारत में विज्ञान के क्षेत्र में विकास की गतिहीन स्थिति (और वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली के विभिन्न आयाम) बहुत-से ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ऐसा लगता है कि मुखर्जी वर्तमान के इन्हीं स्कूलों की बात कर रहे हैं जब वे इनकी तुलना पुराने पारम्परिक ब्राह्मणवादी स्कूलों से करते हैं : "इन स्कूलों में जिन शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग होता था वे बिलकुल भी यांत्रिक, भावशून्य, और दमनकारी नहीं होती थीं जो शिक्षार्थियों की सीखने में रुचि को विद्यालय छोड़ने से पहले ही दबा देती हैं जैसा कि आमतौर पर अधिकांश आधुनिक स्कूलों के शिक्षार्थियों के साथ होता है।"[29] इसके विपरीत, वे गुरुकुल शिक्षा की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं : "यहाँ शिक्षार्थियों को शिक्षक के आन्तरिक तरीकों, उसकी दक्षता के रहस्यों को, और उसके कार्य व जीवन सम्बन्धी भावनाओं को भी आत्मसात करना होता है। ये नितान्त सूक्ष्म बातें हैं जिन्हें सिखाया नहीं जा सकता।"[30]

---

[27] S.C. Sarkar, *ibid.*, p. 212; his opinion echoes that of A.K. Coomaraswamy, *The Indian Craftsman*, London 1909, pp. 84-86.

[28] ये गहन सम्बन्ध कोई खामी भी हो सकते हैं यदि वे किसी छात्र की पहल को बाधित करते हैं या उसपर शिक्षक के बुरे चरित्र को थोपते हैं। प्रारम्भिक ईसाई स्कूल, सेंट ऑगस्टीन और उनके उत्तराधिकारियों द्वारा स्थापित *कानविक्टस्*, ने भी एक ही स्थान पर एक एकीकृत तरीके से सम्पूर्ण शिक्षा प्रदान की। यह शिक्षा शास्त्रीय पैटर्न से अलग थी जहाँ विभिन्न विषयों के लिए छात्रों को विभिन्न शिक्षकों ने शिक्षा दी और उनका सामंजस्य व्यक्तिगत छात्र को खुद बिठाना था। प्रारम्भिक ईसाई धर्म का उद्देश्य धर्मान्तरण था, एक ऐसा आन्दोलन जिसने "आत्मा की सबसे गहरी कोटरिका पर" कार्य किया : Emile Durkheim, *The Evolution of Educational Thought*, trans. Peter Collins, London 1977, pp. 23-26, 29.

[29] Mookerji, *Education*, p. 507.

[30] *Ibid.*, p. XXVI.

वी आर माधवन एक अलग ही धारा के नजर आते हैं जिन्होंने तमिल चिकित्सा विज्ञान की परम्परा को महिमामण्डित करने के अपने प्रयास में पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान पर हमला करते हुए कहा : “आधुनिक पश्चिमी चिकित्सा कला बिखरे हुए ज्ञान पर आधारित है जो विभिन्न स्रोतों से उनकी कल्पित मान्यताओं व अटकलों के साथ लिया गया है और जिन्हें विज्ञान मान लिया गया है; और यही वजह है कि आधुनिक विज्ञान इलेक्ट्रॉनिक्स और ऐसे ही अन्य आधुनिक आविष्कारों का अधिक सतही ज्ञान रखता है।” [31]

[31] V.R. Madhavan, in S.V. Subramanian, V.R. Madhavan (editors), *Heritage of the Tamils. Education and Vocation*, Madras 1986, p. 222.